संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक 19 | पृष्ठ 22 | दिसंबर, 2018 | नई दिल्ली

संज्ञाओं के संघर्ष में सभ्यता

संपादकीय

संपादक

आशुतोष भटनागर

कार्यकारी-संपादक

डॉ. जयप्रकाश सिंह

उप-संपादक

चन्दन आनन्द

रविंद्र सिंह भड़वाल

ई-मेल :

samvadsetu2011@gmail.com

फेसबुक पेज

@samvadsetu2011

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई-मेल पर अवश्य भेजे।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रम

आवरण कथा

संज्ञाओं के संघर्ष में सभ्यता
(पृष्ठ 4-5-6-7)

परिप्रेक्ष्य

अरबी अलतकिया के बीच खशोगी
(पृष्ठ 8-9-10)

घटनाक्रम

कठुआ के कठघरे में मीडिया और मानवाधिकार
(पृष्ठ 11-12-13)

कला संवाद

भारतीय कला में प्रमाशक्ति
(पृष्ठ 14-15-16)

टर्म

मोजो की मौजभरी पत्रकारिता
(पृष्ठ 17)

मुद्दा

सच्चाई की फेक फैक्ट्री
(पृष्ठ 18-19-20)

परंपरा

कालनेमियों के कुचक्र में सबरीमाला
(पृष्ठ 21)

फिल्म समीक्षा

भारतीय यथार्थ का फिल्मी मोहल्ला
(पृष्ठ 22)

संपादकीय

मीडिया-मानवाधिकार का गठजोड़ किस तरह अपनी ब्रांडिंग करता है और किस तरह न्याय का नारा उनके लिए मात्र सुविधाओं को जुटाने का मुखौटा बन जाता है, उसे समझने के लिए कठुआ प्रकरण एक आदर्श केस स्टडी बन सकता है। यहां पर मानवाधिकारवादी चेहरे को पूरी दुनिया में घूमकर भाषण देने और पुरस्कार बटोरने के लिए समय है लेकिन पीड़ित का पक्ष रखने पठानकोट पहुंचने के मार्ग में पेशेवर बाध्यताएं खड़ी हो जाती हैं...

संचारीय परिदृश्य में नाम और नामकरण यकायक महत्वपूर्ण हो उठा है। अयोध्या और प्रयाग के कारण नाम सम्बंधी दृष्टियां भी आपस में उलझ रही हैं। इसी के बहाने इतिहास और देश का बोध भी कसौटी पर आ गए हैं। अपने-अपने इतिहासबोध और देशबोध के अनुसार इन नामों को गलत या सही ठहराया जा रहा है। यदि नाम को एक दुर्घटना मान लिया जाए, मनचाहा सम्बोधन मान लिया जाए तो किसी का भी और कहीं का भी कुछ भी नाम रखा जा सकता है। लेकिन जहां पर हर अक्षर का एक आशय है और नाम गुणधर्मों के आधार पर रखने की परम्परा हो तो नाम को हर परिस्थिति में संरक्षित रखना सांस्कृतिक कर्म बन जाता है। नामकरण को लेकर मीडिया में पैदा हुए उहापोह की स्थिति को समझना और उसके बारे में सम्यक दृष्टि विकसित करने पर इस बार की आवरण कथा आधारित है।

वाशिंगटन पोस्ट के साथ कार्यरत पत्रकार खशोगी की जिस तरह योजनापूर्वक निर्मम हत्या की गई, उसकी पीछे की दृष्टि और मानसिकता के साथ परिचय होना आवश्यक है। वह मानसिकता अलग-अलग रूप धर कर पूरी दुनिया में फैली हुई है। भारतीय संदर्भों में भी उसकी उपस्थिति दिखती है। इसलिए अलतकिया की रणनीति को समझना आवश्यक हो जाता है और नारों के बीच यथार्थ के प्रति सजग रहने की जरूरत भी बढ़ जाती है।

मीडिया-मानवाधिकार का गठजोड़ किस तरह अपनी ब्रांडिंग करता है और किस तरह न्याय का नारा उनके लिए मात्र सुविधाओं को जुटाने का मुखौटा बन जाता हैए उसे समझने के लिए कठुआ प्रकरण एक आदर्श केस स्टडी बन सकता है। यहां पर मानवाधिकारवादी चेहरे को पूरी दुनिया में घूमकर भाषण देने और पुरस्कार बटोरने के लिए समय है, लेकिन पीड़ित का पक्ष रखने पठानकोट पहुंचने के मार्ग में पेशेवर बाध्यताएं खड़ी हो जाती हैं। ऐसे हृदयविहीन, फाइवस्टार एक्टीविज्म से अंततः सभी का मोहभंग होता है, जैसा कि पीड़ित परिवार का भी हुआ।

भारत में रूपायन का अपने दर्शन है । इससे संदेश-सम्प्रेषण के कुछ सूत्र भी जुड़े हुए हैं। दुर्भाग्य से उसे समसामयिक भारतीय परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिशें न के बराबर हुई हैं। कलासंवाद के स्तम्भ के जरिए भारतीय कला के संचारीय परिप्रेक्ष्य को टटोलने की कोशिश शृंखलाबद्ध रूप में हो रही है। आशा है इस प्रयास से भारतीय मीडिया और भारतीय कला के बीच कुछ संवादसेतु उभर सकेंगे और संचार का एक वृहद परिप्रेक्ष्य आकार ले सकेगा।

इस बार के अंक में कुछ नवागंतुकों ने भी दस्तक दी है। नई पीढ़ी की इस पौध को पढ़ने के बाद आशान्वित होने के कई कारण मिल जाते हैं। यह आभास भी होता है कि भारत का संचारीय परिदृश्य लम्बे समय तक पुराने ढर्रे पर नहीं चल सकेगा। उसमें भारतीय दृष्टि का निवेश अब अपनी बारी का इंतजार कर रहा है। आपकी प्रतिक्रियाएं टीम संवादसेतु के लिए पाथेय बनती ही रही हैं, अब उन पर नई पीढ़ी का मनोबल बढ़ाने का गुरुतर दायित्व भी है।

शुभकामनाओं सहित !

— आपका सम्पादक
आशुतोष भटनागर

संज्ञाओं के संघर्ष में सभ्यता

लोदी मीडिया की ढहती सल्तनत-2

संज्ञाएं किसी समाज की वास्तविक पहचान को न केवल उसकी स्मृति में न केवल बनाए रखती हैं बल्कि उस पहचान को फिर से स्थापित करने हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित भी करती है। इसी कारण ये आक्रांताओं के सामने चुनौती बन जाती है। इसलिए संज्ञाहरण या संज्ञा परिवर्तन करके साम्राज्यवादी शक्तियां अपने साम्राज्य को स्थायी बनाने का बंदोबस्त करती रही हैं....

❒ **डॉ. जयप्रकाश सिंह**

संज्ञाएं पहचान का आधार होती हैं। संज्ञा शून्य होना पहचानविहीन होने जैसा है। इसीलिए, पहचान गढ़ने का कोई भी काम किसी संज्ञा से प्रारम्भ होता है। यदि किसी व्यक्ति या समाज से उसकी संज्ञाए छीन ली जाएं तो उसके सामने पहचान का संकट खड़ा हो जाता है। यही खासियत उन्हें सांस्कृतिक और साभ्यतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बना देती है। हर आक्रांता देर-सवेर उन संज्ञाओं का नाम बदलना चाहता है, जिनसे आक्रांत समाज की पहचान जुड़ी हुई होती है।

संज्ञाएं किसी समाज की वास्तविक पहचान को न केवल उसकी स्मृति में न केवल बनाए रखती हैं बल्कि उस पहचान को फिर से स्थापित करने हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित भी करती है। इसीकारण ये आक्रांताओं के सामने चुनौती बन जाती है। इसलिए संज्ञा हरण या संज्ञा परिवर्तन करके साम्राज्यवादी शक्तियां अपने साम्राज्य को स्थायी बनाने का बंदोबस्त करती रही हैं। आक्रांताओं द्वारा संज्ञाओं के साथ खिलवाड़ इसलिए भी किया जाता है क्योंकि यह पराधीन समाज को नीचा दिखाने का अवसर भी प्रदान करता है।

दूसरी तरफ संस्कृति के प्रति संवेदनशील लोग नई संज्ञाओं को संरक्षित रखने की कोशिश करते हैं या आरोपित संज्ञाओं के स्थान पर मूल संज्ञाओं की वापसी के लिए संघर्ष करते हैं। एक सांस्कृतिक व्यक्ति भली प्रकार से यह जानता है कि संज्ञाओं के संरक्षण का मतलब अपनी सभ्यता-संस्कृति के गुणसूत्रों की रक्षा करना है। संज्ञा बीज है। यदि वह अक्षुण्ण बनी रहती है तो सांस्कृतिक प्रवाह भी कमोबेश बना रहता है। संज्ञा प्रेरणा और स्वप्न है। उसमें बदलाव का मतलब किसी सभ्यता के स्वप्नों और प्रेरणाओं पर कब्जा करना है।

एक सभ्यता के रूप में लगभग तेरह सौ वर्षों से राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्षों के साथ भारत संज्ञाओं के मोर्चे पर युद्धरत है। सत्ता हथियाने के बाद होने वाले नरसंहारों, मन्दिरों, लूट-पाट, बलात्कार शिक्षा में बदलाव जैसे बिंदुओं की चर्चा तो कमोबेश होती रही है, लेकिन भारत ने खुद को पहचान देने वाली संज्ञाओं के लिए कैसे संघर्ष किया है, इस पर चर्चा अभी न

के बराबर हुई है।

हाल में इलाहाबाद और फैजाबाद का 'पुनर्नामकरण संस्कार' होने के बाद नाम और नामकरण को लेकर भारतीय मीडिया में यकायक चर्चाओं की बाढ़ आ गई। भारत के सांस्कृतिक अभिकेन्द्रों में शामिल रहे प्रयाग और अयोध्या को उनकी मूलसंज्ञा से सम्बोधित किए जाने के बाद भारतीय मीडिया में इस मुद्दे को लेकर जिस तरह की छिछली चर्चाएं की गई और सतही दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया, उससे यह जरूरी हो गया कि संज्ञाओं से सम्बंधित परम्परागत भारतीय दृष्टिकोण से परिचित हुआ जाए।

उत्तर प्रदेश में परम्परागत संज्ञात्मक चेतना की कुछ स्थानों पर हुई अभिव्यक्ति के बाद मीडिया में जो बहस चली या चलाई गई, वह मुख्यत: चार तर्कों के आधार पर गढ़ी गई। पहली यह कि नाम में क्या रखा है, किसी का कुछ भी नाम रखा जा सकता है। दूसरा तर्क यह गढ़ा गया कि लोगों के विकास और मूलभूत जरूरतों को पूरा करने पर ध्यान देना चाहिए। नाम बदलने से वस्तुस्थिति थोड़ी ही बदल जाती है। तीसरे तर्क का सहारा कुछ

उत्तर प्रदेश में परम्परागत संज्ञात्मक चेतना की कुछ स्थानों पर हुई अभिव्यक्ति के बाद मीडिया में जो बहस चली या चलाई गई, वह मुख्यत: चार तर्कों के आधार पर गढ़ी गई। पहली यह कि नाम में क्या रखा है, किसी का कुछ भी नाम रखा जा सकता है। दूसरा तर्क यह गढ़ा गया कि लोगों के विकास और मूलभूत जरूरतों को पूरा करने पर ध्यान देना चाहिए...

मौलानानुमा लोगों ने लिया और यह कहा कि यदि नामकरण करना ही है तो नए शहरों को बसाकर उनका नामकरण कर दिया जाए। और यह भी कि नामकरण इतिहास के साथ खिलवाड़ है।

इन चार तर्कों को यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि लोदी मीडिया के ये तीनों तर्क न केवल भोथरे हैं बल्कि उनकी सांस्कृतिक निरक्षरता के द्योतक भी हैं। भारत में गुणधर्म के आधार पर नामकरण करने की परम्परा रहा है। चर्चा में रहे अयोध्या या प्रयाग के नामकरण का उनकी विशेषताओं और इतिहास से गहरा सम्बंध है। अयोध्या का मतलब जो योध्य नही हैं, जिसे युद्ध में जीता नहीं जा सकता। प्रयाग के नामकरण का सम्बंध भी ब्रह्मा के प्रथम यज्ञ से है। केवल अयोध्या या प्रयाग का ही नहीं, व्यक्तियों या स्थानों का नामकरण उनके गुणधर्मों के निश्चित करने की भारत में परम्परा रही हैं। संज्ञाओं को लेकर इस अतिशय संवेदनशीलता के कारण ही भारत में निरुक्त जैसा एक पूर्ण शास्त्र अस्तित्व में आया और नामकरण को सोलह संस्कारों में शामिल किया गया। अब जिन्हें टॉम, डिक, हैरी में से कुछ भी चुन लेने की आदत है, वह निश्चित नाम के आग्रह और नामों के अवदान को स्वीकार कर पाएं, यह मुश्किल है।

भारत में नामों की कितनी महत्ता है कि इसका अंदाजा इसी बात लगाया जा सकता है कि भारतीयों ने कुछ अर्थों में नाम को राम से भी बड़ा मान लिया। तुलसीदास जी रामनाम

को ही सर्वोत्तम तीर्थ बताते हुए कहते हैं कि-

काासी बिधि बसि तनु तजें,
हठि तनु तजें प्रयाग।
तुलसी जो फल सो सुलभ
राम-नाम अनुराग।।

यानी विधिपूर्वक काशी में रहकर शरीर त्यागने से और प्रयाग में हठपूर्वक शरीर त्यागने से जो मोक्ष रूपी फल मिलता है, वह राम नाम में अनुराग होने से मिल जाता है।

नाम-महिमा का यह चिंतन, अक्षर को अविनाशी और शब्द को ब्रह्म मानने वाली वृहद दार्शनिक रूप का प्रतिफल है। इसी कारण, भारतीय परम्परा अष्टोत्तरशतनामावली, सहस्त्रनामावली जैसी परम्पराओं का विकास हुआ। प्रयाग और अयोध्या के नामकरण को इस परिप्रेक्ष्य में देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भारतीय जनमानस को उसकी वास्तविक स्मृतियों से जोड़ने वाला आवश्यक सांस्कृतिक कर्म है। इतिहासकार होने का दावा करने वाली एक टोली ने यह तर्क गढ़ा की नाम में बदलाव इतिहास के साथ किया जाने वाला खिलवाड़ है...

तुलसीदास जी ने राम चरित मानस में नाम की विस्तृत महिमा गाई है। वह 'को बड़ छोट कहत अपराधू, सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू' कहकर रूप और नाम की तुलना से बचते हैं लेकिन आगे जाकर रूप को नाम के अधीन बताने में भी नहीं हिचकते हैं-देखिअहिं रूप नाम अधीना। रूप ग्यान नहिं नाम विहीना। उनके अनुसार नाम में अनुराग रखने वाले भक्तों को हमेशा मंगल ही होता है-भाय कुभाय अनख आलसहूं। नाम जपत मंगल दिसि दसहूं।

नाम-महिमा का यह चिंतन, अक्षर को अविनाशी और शब्द को ब्रह्म मानने वाली वृहद दार्शनिक रूप का प्रतिफल है। इसी कारण, भारतीय परम्परा अष्टोत्तरशतनामावली, सहस्त्रनामावली जैसी परम्पराओं का विकास हुआ। प्रयाग और अयोध्या के नामकरण को इस परिप्रेक्ष्य में देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भारतीय जनमानस को उसकी वास्तविक स्मृतियों से जोड़ने वाला आवश्यक सांस्कृतिक कर्म है।

इतिहासकार होने का दावा करने वाली एक टोली ने यह तर्क गढ़ा की नाम में बदलाव इतिहास के साथ किया जाने वाला खिलवाड़ है। भारतीयता को लेकर हमेशा अरण्यरोदन करने वाली एक मंडली ने नामकरण को फिजूलखर्ची साबित करने की कोशिश की।

स्पष्ट है नामकरण को लेकर भारतीय परम्परा बहुत सजग और सुव्यवस्थित रही है। इसमें किसी का भी, कुछ भी नाम रख देने वाले चिंतन के लिए स्पेस न के बराबर रहा है। नामकरण से सम्बंधित परम्परागत बोध के छीजने के बावजूद आज भी एक सामान्य भारतीय परिवार में जन्मे नवजात का नामकरण उसकी जन्मकुंडली के आधार पर संभावित गुणों और विशेषताओं का ध्यान में रखकर किया जाता है। ऐसे में कम से कम भारतीय संदर्भों में तो यह तर्क हास्यास्पद ही कहा जाएगा कि नाम में क्या रखा है? या किसी का कुछ भी नाम रखा जा सकता है।

दूसरा तर्क यह है दिया गया कि नाम बदलने से वस्तुस्थित थोड़ी ही बदलती है। हां, यह सच है कि नाम बदलने से तुरंत वस्तुस्थिति में तो कोई बदलाव नहीं आता लेकिन यह भी उतना ही सच है कि इससे हमारी चेतना की प्रक्रिया और बोधात्मक स्वरूप में तुरंत ही बदलाव आ जाता है। यह बोधात्मक बदलाव देर-सवेर वस्तुस्थिति में बदलाव का कारण बनता है। नामकरण, विकास की प्रक्रिया और सांस्कृतिक बोध में सम्बंध स्थापित कर वस्तुस्थिति में बदलाव का मजबूत और दूरगामी आधार सृजित करता है।

विकास की दिशा यदि सांस्कृतिक-बोध से शून्य है तो ऐसा विकास न स्थायी होता है और न ही शुभ। ऐसा विकास अंततः रावण की लंका बनाता है, जो सोने की होते हुए अनाचार का पर्याय बनती है। इसलिए विकास और सांस्कृतिक बोध को साथ लाने का कार्य उचित

नामकरण करने या मूल नामों को पुन: स्थापित करने से प्रारंभ होता है। नामकरण तुरंत बदलाव नहीं पैदा करता लेकिन यह ऐसा बोध पैदा करता है, जिससे बदलाव की संभावनाएं पैदा होती हैं।

जहां तक नए शहरों को बसाकर उनका नामकरण करने की बात है तो आदर्श स्थिति में ऐसा ही होना चाहिए। लेकिन यह तर्क उन शहरों के संदर्भ में अपने-आप प्रासंगिक हो जाता है, जिनके प्राचीन नामों को आक्रांताओं ने जबरन बदल दिया।

अयोध्या या प्रयाग प्राचीन नगर थे, इन नगरों से ही आस-पास के क्षेत्रों की पहचान होती थी। इन नगरों को आक्रमणकारियों ने तो नहीं बसाया था। धार्मिक-सांस्कृतिक कारणों इन पुराने शहरों को नए नाम दे दिए गये थे। इसलिए सांस्कृतिक दृष्टि से बर्बर लोगों ने बिना शहर बसाए नए नामकरण करने की जो भूल की थी, उसका परिमार्जन किया जाना आवश्यक हो जाता है। अयोध्या और प्रयाग को उनका मूल सम्बोधन पुन: प्रदान कर ऐसा ही आवश्यक परिमार्जन किया गया है।

इतिहास के साथ खिलवाड़ करने की बात तो पूरी तरह देशबोध और कालबोध से जुड़ी बोध है। यदि आप का इतिहास 11वीं शताब्दी या 15वीं शताब्दी तक जाता है तो नैसर्गिक नाम देने के सरकारी प्रक्रिया इतिहास के साथ खिलवाड़ लगेगी, लेकिन यदि आपका इतिहास बोध इससे और आगे जाता है तो यह इतिहास के साथ किए गए खिलवाड़ को ठीक करने जैसा होगा। मामला दृष्टि का है, कोई 11 शताब्दी के बाद के घटनाक्रम को ही इतिहास मानता है तो खुद ही इतिहास के साथ खिलवाड़ कर रहा है।

फिजूलखर्ची के संदर्भों में तो यही कहा जा सकता है कि अर्थ का सबसे अच्छा निवेश बोध, ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में ही हो सकता है। इन क्षेत्रों में किया गया निवेश अंतत: आर्थिक दृष्टि से भी लाभकारी साबित होता है। नैसर्गिक नाम की वापसी बोध में बदलाव के लिए बहुत जरूरी है और इसमें होने वाले आर्थिक खर्चे को आवश्यक निवेश मानकर स्वीकार किया जाना चाहिए। यहां इस तथ्य को भी ध्यान रखना चाहिए कि लालबुझक्कणों की एक टोली आर्थिक खर्चे का तर्क तभी देती है जब देश कुछ मूलभूत और महत्वपूर्ण हासिल करने की दिशा में अग्रसर होता है। पोखरण के समय भी खर्चे का रोना-रोया गया था, मंगलयान के समय भी और अयोध्या और प्रयाग के नामों को लेकर रोजी-रोटी की दुहाइयां दी जा रही है। रोजी-रोटी का प्रश्न महत्वपूर्ण है। लेकिन हमेशा सांस्कृतिक भाव-बोध या मूलभूत शोध के विरोध में जाकर ही रोजी-रोटी का प्रश्न उठाना शातिराना हरकत ही कही जाएगी।

जो यह मानते हैं कि सांस्कृतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष अब भी चल रहा है, उनके लिए नैसर्गिक नामों की वापसी एक आवश्यक कदम और महत्वपूर्ण उपलब्धि की तरह है। अकादमिक षड्यंत्रों और मीडियाई छल से परे जाकर आम जनमानस को टंटोले तो कृत्रिम नामों का हटना उनके लिए यह अरसे से कलजे पर रखे हुए पत्थर और सम्मान पर लगे हुए कलंक के हटने जैसा है। भारतीय जनमन का ईमानदारी से टंटोलें तो वहां पर यही स्थायी भाव मिलेगा।

अरबी अलतकिया के बीच खशोगी

❑ मौनस तलवार

अलतकिया एक अरबी शब्द है। अलतकिया के अलग-अलग आशय निकाले जाते हैं, लेकिन प्राय: इसका उपयोग नकारात्मक और अनैतिक संदर्भों में ही किया जाता है। अलतकिया के अंतर्गत झूठ, बर्बरता और धोखे को रणनीतिक सिद्धांत के तौर पर न केवल धड़ल्ले से इस्तेमाल किया जाता है, बल्कि इसे नैतिक दृष्टि से जायज भी ठहराया जाता है। जिहादी युद्धों के दौरान दुश्मन से झूठ बोलना, उसे धोखे में रखना, मौका पाते ही उसका सफाया करना, निश्चित समय के लिए अन्य पंथों के सिद्धांतों को मानने का ढोंग करना या जब तक अपनी स्थिति कमजोर है तब तक अन्य मतों और मतावलम्बियों को भी अपने बराबर मानना जैसे काम अलतकिया की रणनीति के अंतर्गत किए जाते रहे हैं।

ऐसा लगता है कि अरबी मानसिकता में अलतकिया का सिद्धांत अब गहरे तक बैठा हुआ है। वाशिंगटन पोस्ट के लिए कार्य कर रहे पत्रकार जमाल खशोगी की हत्या जिस बर्बरता के साथ की गई और हत्या पर लीपा-पोती करने के लिए सऊदी अरब की तरफसे जिस तरह झूठ का अम्बार खड़ा किया गया, वह इस बात की तस्दीक करता है।

झूठ के प्रति सऊदी अरब का यह आकर्षण तब भी दिखा था, जब सऊदी अरब ने कतर के समक्ष थोड़े समय पूर्व शांति के लिए कुछ शर्तें रखी थीं। उस समय एक शर्त ने पूरी दुनिया को चौंका दिया था। यह शर्त थी अल-जजीरा को बंद करना। सामान्यत: दो देशों के सम्बंधों की आंच से मीडिया बची रहती है, लेकिन सऊदी अरब ने इस मर्यादा को लांघकर किसी न्यूज चैनल को बंद करने की छोटी मांग को शांति-प्रस्ताव का हिस्सा बना दिया। अलतकिया के प्रति आकर्षित मानसिकता ही झूठ और धोखे को बचाए रखने के लिए पत्रकारिता और पत्रकारीय संस्थानों को इस हद तक निशाना बना सकती है।

अब अमेरिका में रह रहे 59 वर्षीय पत्रकार जमाल खशोगी की निर्मम हत्या से सऊदी अरब फिर से पत्रकारीय कारणों से चर्चा में है। खशोगी सऊदी राजपरिवार के कट्टर आलोचक थे और वह सलमान की युवराज के रूप में ताजपोशी पर सऊदी अरब को छोड़कर और अमेरिका चले गए। वह अमेरिका से इस्ताम्बुल में रहने

अधिकांश हल्कों में इस हत्या के लिए रियाद को जिम्मेदार ठहराया गया और ऐसा करने के कई करण थे। हत्या के बाद कमांडो टीम के मुखिया माहर अब्दुल अजीज मुतरेब ने युवराज मोहम्मद बिन सलमान के कार्यालय प्रमुख बदर अल-असाकर को चार बार फोन किया। एक फोन युवराज के भाई खालेद बिन सलमान को भी किया गया, जो वाशिंगटन में सऊदी अरब के राजदूत हैं। प्रारंभ में सऊदी अरब ने इस हत्याकांड में किसी तरह का हाथ होने से साफ इनकार कर दिया...

वाली अपनी तुर्क मंगेतर हातिज चेन्जिज से विवाह करने तुर्की गए हुए थे, यहीं पर दो अक्तूबर को उनकी हत्या कर दी गई। उन्हें विवाह के सिलसिले में सऊदी कॉन्सुलेट से कुछ दस्तावेज चाहिए थे।

खशोगी की हत्या जिस बर्बरता के साथ की गई, उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। तुर्की के दैनिक अखबार 'येनी सफाक' ने इस्ताम्बुल के सऊदी कॉन्सुलेट से आई आवाजों की एक बहुचर्चित ऑडियो रिकार्डिंग का उल्लेख करते हुए लिखा था कि पूछताछ के समय उनकी उंगलियां काट दीं और बाद में उनका सिर भी धड़ से अलग कर दिया।

अधिकांश हल्कों में इस हत्या के लिए रियाद को जिम्मेदार ठहराया गया और ऐसा करने के कई करण थे। हत्या के बाद कमांडो टीम के मुखिया माहर अब्दुल अजीज मुतरेब ने युवराज मोहम्मद बिन सलमान के कार्यालय प्रमुख बदर अल-असाकर को चार बार फोन किया। एक फोन युवराज के भाई खालेद बिन सलमान को भी किया गया, जो वाशिंगटन में सऊदी अरब के राजदूत हैं।

प्रारंभ में सऊदी अरब ने इस हत्याकांड में किसी तरह का हाथ होने से साफ इनकार कर दिया। सऊदी अरब पहले तो यह कह रहा था कि खशोगी की हत्या हुई ही नहीं है, वे जीवित हैं। जब इस झूठ को सच सिद्ध करना असंभव हो गया, तो उसने यह कहना शुरू कर दिया कि कॉन्सुलेट में गर्मागर्मी और हाथापायी हो जाने से हुई एक दुर्घटना में खशोगी की जान चली गयी। सऊदी के शाह और युवराज ने खशोगी के भाई और पुत्र को राजमहल में बुलाकर खशोगी की मृत्यु पर अपना शोक प्रकट कर मामले को ठंडा करने की कोशिश की, लेकिन इसके लिए युवराज सलमान को जिम्मेदार मानने से इनकार कर दिया।

बाद में प्रिंस मोहम्मद बिन सलमान ने भी पत्रकार जमाल खशोगी की हत्या को नृशंस अपराध बताकर अपना दामन पाक-साफ होने की कोशिश की। उन्होंने कहा है कि उनका देश तुर्की के अधिकारियों का सहयोग कर रहा है और न्याय होगा। उन्होंने कहा कि खशोगी हत्या मामले में सभी जिम्मेदार अपराधियों को सजा दी जाएगी। उन्होंने इस सफाई के लिए अपने ड्रीम प्रोजेक्ट फ्यूचर इन्वेस्टमेंट इनिशिएटिव फोरम के मंच को चुना। खशोगी की हत्या के बाद कई पक्षों ने इस आयोजन का बहिष्कार कर दिया था। उन्होंने कहा कि सभी सऊदी लोगों के लिए यह अपराध दुखदायी है और यह पूरी दुनिया के हर व्यक्ति के लिए दर्दनाक और नृशंस है। जिन लोगों ने इस अपराध को अंजाम दिया है, उन्हें जिम्मेवार ठहराया जाएगा। आखिर में न्याय की जीत होगी।

हत्या जिस सुनियोजित ढंग से की गई थी और प्रमाण जिस तरह से सामने आ रहे थे, उसके कारण सलमान को अपनी सफाई

देने के लिए खुद आना पड़ा।

न्यूयॉर्क टाइम्स के मुताबिक जमाल खशोगी पर दूतावास में घुसने के दो मिनट के भीतर ही हमला किया गया और सात मिनट के भीतर उनकी मौत हो गई। वाशिंगटन पोस्ट की एक खबर के अनुसार सलमान के भाई खालिद बिन सलमान ने खशोगी से फोन पर कहा था कि वे इस्ताम्बुल स्थित सऊदी दूतावास जाएं और अपनी शादी से संबंधित कागजी कार्यवाही पूरी कर लें। खालिद ने उनसे सुरक्षा का वादा भी किया था। खालिद अमेरिका में सऊदी राजदूत हैं।

खशोगी की हत्या में कई दृष्टिकोणों के साथ सभ्यतागत आयाम भी शामिल हैं। हालांकि कहीं भी इस घटना को सभ्यतागत तरीके से न लिया गया और न ही विश्लेषण किया गया। तुर्की द्वारा इस मसले को लेकर अपनाए गए रवैये को बिना सभ्यतागत आधारों के नहीं समझा जा सकता। तुर्की और सऊदी अरब की प्रतिद्वंद्विता की सदियों पुरानी है। इस प्रतिद्वंद्विता का कारण इस्लाम की राजनीति है...

तुर्की के राष्ट्रपति रजब तैय्यब एर्दोआन ने दावा किया कि तुर्की के पास ऐसे पक्के प्रमाण हैं जो साबित करते हैं कि दो अक्तूबर को इस्ताम्बुल के सऊदी कॉन्सुलेट में पत्रकार जमाल खशोगी की मृत्यु एक सुनियोजित साजिश थी। तुर्की के राष्ट्रपति के अनुसार हत्या की योजना 'कई दिन पहले ही' बना ली गई थी। उन्होंने दावा किया योजना को साकार करने के लिए छोटे आकार के दो चार्टर्ड जेट विमानों से 15 सदस्यों वाली तीन कमांडो टीमें इस्ताम्बुल पहुंची हुई थीं। एर्दोआन के मुताबिक सऊदी अरब से आये 15 कमांडो के अलावा कॉन्सुलेट के तीन अधिकारियों की भी उन लोगों के तौर पर पहचान की गई है।

खशोगी की हत्या में कई दृष्टिकोणों के साथ सभ्यतागत आयाम भी शामिल हैं। हालांकि कहीं भी इस घटना को सभ्यतागत तरीके से न लिया गया और न ही विश्लेषण किया गया। तुर्की द्वारा इस मसले को लेकर अपनाए गए रवैये को बिना सभ्यतागत आधारों के नहीं समझा जा सकता। तुर्की और सऊदी अरब की प्रतिद्वंद्विता की सदियों पुरानी है। इस प्रतिद्वंद्विता का कारण इस्लाम की राजनीति है। 18 वीं सदी तक एशिया से जाने जाने वाले इलाके पर ओटोमन सल्तनत का राज था। इसका केंद्र इस्ताम्बुल था। मक्का और मदीना सिर्फ धार्मिक वजहों से अहम थे, उनकी सियासी अहमियत नहीं थी। फिर 1740 में अब्द अल वहाब का उदय हुआ जो असल इस्लाम को वापस लाने का नारा लेकर आए। यही विचार धारा सलफी इस्लाम का आधार बनी। सलफी मुसलमान शिया मुसलमानों और सुन्नी तुर्कों पर हमला बोलते रहे और सऊदी शासकों की नजदीक रहे। तुर्की और सऊदी अरब के बीच का टकराव इसी कारण रहा।

वर्तमान संदर्भों ने इस टकराव को हवा दी है। सऊदी अरब उस वहाबी इस्लाम का सबसे बड़ा निर्यातक माना जाता है,जो इस्लामिक स्टेट जैसी आतंकी संगठन की सोच को बढ़ावा देता है। सऊदी अरब सदियों से शिया-सुन्नी नस्लीय हिंसा को हवा देता है, यमन में हो रहे नरसंहार का कारण भी सऊदी अरब है।

खशोगी की बर्बर हत्या मीडियाई संदर्भों में अलतकिया का प्रयोग है और इस्लामिक राजनीति की वर्तमान स्थिति को समझने का एक अच्छा जरिया भी। अलतकिया का उपयोग भारत में जहां-जहां हो रहा है, यदि हम उन संदर्भों को पहचान कर पाएं तो यह भारतीय मीडिया और भरातीय सभ्यता बर्बरता का शिकार होने से बच सकती है।

कठुआ के कठघरे में मीडिया और मानवाधिकार

जम्मू के कठुआ प्रकरण में जिस तरह झूठ परोसा गया और अब सच का जो स्वरूप सामने आ रहा है, वह मीडिया और मानवाधिकारवादियों की सच्चाई को समझने का आईना बन सकता है। बच्ची का नाम और संप्रदाय सामने आते ही इस पूरे गिरोह को अपना एजेंडा सेट करने और मतप्रचार करने के लिए जैसे मनचाहा मुद्दा मिल गया था...

❑ **चन्दन आनन्द**

चार लोगों के विरोध-प्रदर्शन को पूरे देश का मुद्दा बना देने की भारतीय मीडिया की कला दुनिया के चुनिंदा एवं हैरतअंगेज कारनामों में से एक है। प्रायः ऐसे विरोध-प्रदर्शनों का चुनाव संप्रदाय-जाति के आधार पर और मानवाधिकारों का बहाना बनाकर किया जाता है। ऐसे हैरतअंगेज कारनामे करने वाले मीडियाई वर्ग की दाल अब पहले जैसी गल नहीं रही। फिर भी इस गिरोह की तरफ से प्रयास तो जारी हैं ही। दाल न गलने के बहुत से कारण हैं। इनमें सबसे पहला तो यही कि सच को अभिव्यक्त करने के लिए अब कई ऐसे प्लेटफॉर्म उपलब्ध हैं, जहां जनता अपना नजरिया व्यक्त कर सकती है। दूसरा, बौद्धिकतावाद के शिकार ये लोग सारा एजेंडा ही उस भाषा में सेट करते हैं, जो समाज की है ही नहीं। इसलिए विदेशी मीडिया, संयुक्त राष्ट्र और इनके एजेंडे का समर्थन करने वाले कुछ देश तो इनकी बात समझ लेते हैं, लेकिन जिस मोहल्ले की घटना का उदाहरण देकर ये अपना मतप्रचार करते हैं, वहां के लोग ही उसे समझ नहीं पाते। जम्मू के कठुआ प्रकरण में जिस तरह झूठ परोसा गया और अब सच का जो स्वरूप सामने आ रहा है, वह मीडिया और मानवाधिकारवादियों की सच्चाई को समझने का आईना बन सकता है। बच्ची का नाम और संप्रदाय सामने आते ही इस पूरे गिरोह को अपना एजेंडा सेट करने और मतप्रचार करने के लिए जैसे मनचाहा मुद्दा मिल गया था। दिल्ली से बॉलीवुड तक और विदेशों में बैठे इस गिरोह के लोगों ने इस पूरी घटना को एकदम से एक नया एंगल दे दिया और मीडिया को साथ लेकर पूरे विश्व को चीख-चीख कर बताया गया कि भारत में किसी मंदिर में आठ साल की मुस्लिम बच्ची से कई दिनों तक हिंदुओं द्वारा बलात्कार किया गया और अंत में उसे मार दिया गया।

बॉलीवुड में तो यह तक प्रचार कर दिया कि 'देवीस्थान में बच्ची से बलात्कार–मैं हिन्दुस्तान हूं और मैं शर्मिंदा हूं।' देखते ही देखते जो आंदोलन स्थानीय लोग महीनों से कर रहे थे, उसे एकदम से तीन माह बाद देश के अन्य हिस्सों से मानवाधिकार और न्याय के देवताओं ने आकर हाइजैक कर लिया और जम्मू से लेकर संयुक्त राष्ट्र तक यह गिरोह प्रचार–प्रसार में जुट गया। इस बार भी देश में फैल रही असहिष्णुता से लड़ने के लिए मानवाधिकार और न्याय के देवताओं को उतारा गया। इनमें बच्ची को न्याय दिलाने के लिए वकील के तौर पर उतरी जम्मू की ही दीपिका सिंह रजावत और साथ ही उनके कुछ साथी जिनमें अधिवक्ता तालिब हुसैन और जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय की पूर्व अध्यक्ष शहला रशीद ने पीड़ित परिवार को आर्थिक मदद पहुंचाने के लिए अपनी सक्रियता दिखाई।

बाद में इस पूरे घटनाक्रम और बलात्कार की बातों पर भी बहुत से प्रश्न चिन्ह उठने लगे, जिससे यह गिरोह एक बार फिर भाग खड़ा हुआ। इनमें सबसे पहले हम बात करेंगे जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय की क्रांतिकारी नेता शहला रशीद की, जिसने इस बच्ची के परिवार को आर्थिक सहायता देने का काम अपने कंधों पर लिया था। शहला का कहना था कि वह पीड़ित परिवार का केस लड़ने के लिए और अन्य आवश्यकताओं के लिए देश–विदेश से पैसे जुटाएंगी। अंततः वह अपनी जेएनयू वाली जुबान पर खरी उतरीं।

उन्होंने देश–विदेश से उस बच्ची का नाम ले लेकर बहुत सारा धन इकट्ठा किया। धन इकट्ठा करके उन्होंने सार्वजनिक तौर पर पूरे देश को खुद बताया कि उन्होंने बच्ची के परिवार के लिए 40 लाख रुपए जुटा लिए हैं।

यह 40 लाख भी उन्होंने खुद बताए हैं, असल रकम कितनी होगी अल्लाह जाने। आज 10 महीने से ऊपर हो गए उस परिवार को, लेकिन इन क्रांतिकारियों से एक कौड़ी तक नसीब नहीं हुई। आसिफा के परिवार को केस लड़ने के लिए और रोज पठानकोट जाने के लिए अंततः अपने मवेशी बेचने पड़े और शहला रशीद से जब ट्विटर पर देश द्वारा पैसे का हिसाब पूछा गया, तो उन्होंने अपना ट्विटर अकाउंट ही डिलीट कर दिया।

इस कड़ी में दूसरा नाम आता है अधिवक्ता तालिब हुसैन का, जो आसिफा के खिलाफ हुए अन्याय के लिए बलात्कारियों को कड़ी से कड़ी सजा दिलाना चाहते थे। देश की मीडिया ने बाकी मानवाधिकार और न्याय के देवताओं की तरह इन्हें भी हीरो के रूप में प्रस्तुत किया। कुछ महीनों बाद दो महिलाओं ने तालिब हुसैन के खिलाफही बलात्कार की शिकायत दर्ज कराई, जो केस उन पर चल रहा है। साथ ही घरेलू हिंसा और दहेज के लिए अपनी पत्नी को जान से मारने के प्रयास के मामले में भी वह अभियुक्त हैं।

इसी कड़ी में अंत में नाम आता है अधिवक्ता दीपिका रजावत का, जिनके इर्द–गिर्द यह पूरा खेल चला। मीडिया ने दीपिका रजावत को आसिफा के लिए न्याय का चेहरा बना के देश–विदेश में पेश किया। दीपिका रजावत इस पूरे घटनाक्रम में हीरो बनकर उतरीं और आसिफा का नाम लेकर देश के विभिन्न हिस्सों में तो क्या, कनाडा और संयुक्त राष्ट्र तक पहुंच गईं। इसी महीने जिस दीपिका को न्याय की देवी बनाकर देश–विदेश में मीडिया द्वारा पेश किया गया, उसी को केस से बाहर निकालने की मांग स्वयं आसिफा के पिता ने कोर्ट में की। अंततः दीपिका रजावत को आसिफा के घर वालों ने केस लड़ने से मना कर उसे बाहर निकाल दिया। इसका कारण भी आसिफा के पिता ने बताया। उनके अनुसार इस केस में अब तक 110 सुनवाइयां हो चुकी हैं और दीपिका रजावत उनमें से केवल दो सुनवाइयों में ही आई हैं।

आसिफा के परिवार द्वारा केस से बाहर निकाले जाने के बाद जब दीपिका से इस बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा–'मैंने केस के लिए इन लोगों से कोई पैसे चार्ज नहीं किए। मेरे और भी क्लाइंट्स हैं, जिनके मैं केस लड़ रही हूं, जिनसे मैंने पैसे लिए हैं, जिनकी वजह से मेरी डिग्निफाइड लाइफ ऐश्योर्ड रहती है। मैं उनके लिए प्रतिबद्ध हूं। इसलिए आसिफा का केस लड़ने के लिए मेरे पास समय नहीं है कि मैं रोज पठानकोट जाऊं।' मुझे लगता नहीं कि दीपिका रजावत के शब्दों की समीक्षा या उस पर टिप्पणी करने की हमें कोई आवश्यकता है। उन्होंने अपना चरित्र और सोच खुद ही बता दिए हैं। अब जिस आसिफा के केस को लड़ने के लिए उनके पास समय नहीं है, क्योंकि वह उनके प्रति प्रतिबद्ध हैं, जिनसे पैसे लिए हैं, उस आसिफा के नाम पर किस तरह उन्होंने पिछले छह–सात महीनों में पूरे देश और विदेश का भ्रमण किया और मानवता तथा न्याय पर बड़े–बड़े मंचों पर भाषण देकर कई पुरस्कार बटोरे, इस पर जरा नजर डाल लें–

1. 24 अप्रैल, 2018– ऑफ दि कफ विद दीपिका सिंह रजावतः टॉक शो विद शेखर गुप्ता, मुंबई।

यह कार्यक्रम शेखर गुप्ता और बरखा दत्त द्वारा चलाए गए डिजिटल मीडिया प्लेटफॉर्म 'दि प्रिंट' द्वारा मुंबई में आयोजित किया गया। आसिफा के लिए पठानकोट न पहुंच पाने वाली दीपिका आसिफा उस शो के लिए मुंबई पहुंच गई और शेखर गुप्ता के साथ मानवता और न्याय पर लंबी चर्चा की।

2. 9 मई, 2018– हिन्दुस्तान पटना डायलॉग– पटना टॉक

यह कार्यक्रम हिन्दुस्तान मीडिया चैनल द्वारा बिहार से चलाया गया और दीपिका मानवता पर बौद्धिक देने उस कार्यक्रम के लिए जम्मू से बिहार गईं। इस कार्यक्रम के दौरान बार–बार एक लाइन स्क्रीन पर चलाई जा रही थी– ''मददगार मन ने बना दिया वकील''।

3. 12 जून, 2018

आसिफा के नाम पर दीपिका को मुंबई में 'आईएमसी लेडीज विंग–वुमन ऑफ दि ईयर' अवार्ड से सम्मानित किया गया।

4. 17 जून, 2018

मुंबई में वुमन ऑफ दि ईयर से सम्मानित होने के बाद दीपिका पांच दिन बाद केरल में 'वुमन ऑफ दि सेंचुरी अवार्ड इन सेल्यूट सक्सेस–2018' लेने पहुंचीं।

5. 23 जून, 2018

कनाडा के सरे ब्रिटिश कोलंबिया में 'ह्यूमेनीटेरियन अवार्ड–2018' से नवाजा गया और मानवता पर गहन चर्चा भी की गई।

6. 12–13 जुलाई, 2018

दो दिवसीय 'मनोरमा न्यूज कनक्लेव–कोची' में दीपिका मानवता और न्याय पर अपनी बात रखने और चर्चा करने के लिए उपस्थित रहीं।

7. 10 अगस्त, 2018

इस दिन असहिष्णुता के विरोध में चल रहे 'कैंपस फ्रंट ऑफइंडिया' के प्रदर्शन में दीपिका ने दिल्ली में खूब नारे लगाए।

8. 11 अगस्त, 2018

इसके अगले दिन 'कैंपस फ्रंट ऑफइंडिया–कैंपेन' के कार्यक्रम में दीपिका कांग्रेस के मणिशंकर अय्यर के साथ मुख्यातिथि के रूप में रहीं और वहां मौजूद जनता को देश में फैल रही असहिष्णुता से अवगत कराया।

9. 25 अगस्त, 2018

आसिफा को असल न्याय दिलाने के लिए पठानकोट जाने का समय नहीं था, लेकिन दिल्ली के संसद मार्ग में विरोध कर रहे अपने गिरोह, जो इस बार किसी अन्य बैनर और नाम तले संघर्ष कर रहा था, को संबोधित करने दोबारा दिल्ली पहुंचीं।

10. 4 सितंबर, 2018

दिल्ली के संसद मार्ग में वृंदा करात के साथ कम्युनिस्ट पार्टी के अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति के अच्छे दिनों के लिए हो रहे प्रदर्शन में संघर्ष करने पहुंचीं।

11. 18–22 सितंबर, 2018

संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार सत्र के लिए जेनेवा पहुंचीं और मानवता और न्याय पर अपने शब्द रखे।

12. 15 अक्तूबर, 2018

बलात्कार के आरोप में फंसे अपने मानवतावादी और न्यायवादी मित्र तालिब हुसैन का केस लड़ने पहुंचीं।

13. 21 अक्तूबर, 2018

अब जबकि मानवता, न्याय और मानवाधिकार की बात आए और मदर टेरेसा का नाम न आए, ऐसा संभव हो नहीं सकता। इस दिन हार्मनी फाउंडेशन द्वारा 'मदर टेरेसा मेमोरियल अवार्ड फॉर सोशल जस्टिस–2018' द्वारा दीपिका को उनकी बहादुरी और सेवा के लिए नवाजा गया।

14. 27–29 अक्तूबर, 2018

'वोग क्रूसेडर ऑफ दि ईयर अवार्ड' के लिए दीपिका फिर मुंबई गईं और अपने साहस का परिचय देते हुए लोगों को मानवता के गुर सिखाए।

इन सबके अलावा और बहुत सी छोटी–मोटी जगहों पर दीपिका रजावत ने आसिफा का नाम ले लेकर और भाषण देकर खूब नाम और धन कमाया। जम्मू बार ऐसोसिएशन ने जहां दीपिका और उनके गिरोह के एजेंडे को पहले से भांपते हुए उनसे किनारा किया, वहीं पाक अधिकृत जम्मू–कश्मीर की बार ऐसोसिएशन ने दीपिका को इस बहादुरी के लिए उनको बार की मानद सदस्यता प्रदान की। इसकी चिट्ठी उसके सचिव मिंया सुल्तान महमूद ने खुद हस्ताक्षर करके उन्हें भेजी। जो दीपिका मीडिया के कैमरों के सामने आसिफा को न्याय दिलाने के लिए आंदोलित रहीं, उस बच्ची की मौत पर दुनिया भर में घूम कर भाषण देती रहीं और अवार्ड इकट्ठे करती रहीं, वह उस बच्ची को जहां असल न्याय मिलना है, उस कोर्ट में केवल 110 में से दो सुनवाइयों में उपस्थित हुईं। आसिफा को कोर्ट में न्याय दिलाने के लिए जहां उनके पास समय का अभाव है और रोज पठानकोट जाना संभव नहीं है, वही दीपिका रजावत आसिफा के नाम पर अवार्ड लेने तथा मानवता और न्याय पर भाषण देने जेनेवा, कनाडा और देश भर में घूम आईं। जस्टिस कैंपेन की नायिका कैंपेनिंग पर ही ध्यान देती रहीं, क्योंकि जस्टिस तो कभी एजेंडा था ही नहीं। पीड़िता के परिवार को बीच में छोड़कर वह अपना अभियान चलाती रहीं। आसिफा के नाम पर अवार्ड्स और भाषणों का यह सिलसिला अभी और लंबा चल सकता था, लेकिन न्याय की आस में बैठे आसिफा के पिता ने स्वयं ही दीपिका रजावत को बाहर निकाल दिया। आसिफा के लिए दीपिका की लगन और मेहनत मीडिया के अलावा न ही आसिफा के परिवार को दिखाई दी और न ही देश को। वहीं, दूसरी ओर बच्ची को न्याय दिलाने के लिए रोज सुनवाई मे आने वाले अधिवक्ता केके पुरी, मुबीन फारुकी, पंकज तिवारी, विशाल शर्मा, पंकज कालिया, जोगिंद्र सिंह गिल, करणजीत सिंह, सौरभ ओहरी, वरुण चिब और हरविंदर सिंह का नाम कहीं मीडिया में नहीं आया, क्योंकि न तो वे उस गिरोह का हिस्सा हैं और न ही किसी बच्ची की मौत पर देश–विदेश में अपना एजेंडा चलाते हैं। जानकारी के लिए ये सभी अधिवक्ता हर रोज 30 से 250 किमी तक की यात्रा करके रोज पठानकोट आते हैं आसिफा के लिए, वहीं मीडिया द्वारा स्थापित न्याय और मानवता की देवी देश के अन्य राज्यों, कनाडा और संयुक्त राष्ट्र तो जा सकती हैं, पर जम्मू से डेढ़ घंटे की यात्रा वाला पठानकोट उनके लिए बहुत दूर है। अब जब आसिफा के परिवार द्वारा दीपिका को केस से बाहर का रास्ता दिखाया गया, तो उन्होंने बौखलाहट में ट्विटर पर लोगों द्वारा सवाल पूछे जाने पर आसिफा के परिवार को ही कठघरे में खड़ा कर दिया और जो भी उनके विरोध में लिख रहा है, उसे अवमानना के केस से धमकाने में लगी हुई हैं। इस घटनाक्रम को देखकर हाल ही में एयर इंडिया की फ्लाइट में शराब के लिए एक आइरिश महिला द्वारा स्टाफ को धमकाने और गाली–गलौज करने की घटना याद आ गई। उन मोहतरमा का भी यही कहना था कि वह अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार अधिवक्ता हैं और लोगों के मानवाधिकारों के लिए लड़ती हैं। तुम तुच्छ लोग मुझे शराब देने से मना कैसे कर रहे हो? अब यह तो भगवान ही जानें कि ये सब मानवाधिकार और न्याय के देवता कौन से मानवों के लिए लड़ रहे हैं और साधारण मानव के प्रश्न पूछे जाने पर या आईना दिखने पर क्रोधित होकर धमकाने की मुद्रा में क्यों आ जाते हैं? भारतीय मीडिया और विदेशी मीडिया द्वारा नैतिकता के शिखर पर स्थापित की जाने वाली अधिवक्ता दीपिका रजावत को भी ठीक उसी तरह हीरो बनाकर पेश किया गया, जिसकी चर्चा हमने प्रारंभ में ही की थी। लेकिन बात अंततः वहीं खत्म हुई, जहां से हमने शुरुआत की थी कि समाज को सबसे अच्छे से समझने का दावा करने वाला यह पूरा वर्ग और मीडिया समाज से पूरी तरह कटा हुआ है। यह एक बार फिर साबित हो गया कि इनकी मुहिम और मतप्रचार के एजेंडे ऐसे ही पिटते रहेंगे, क्योंकि यह पब्लिक है, यह सब जानती है।

–लेखक, मीडिया -विश्लेषक और जम्मू-कश्मीर की मीडिया-प्रवृत्तियों के अध्येता हैं।

❐ त्रिवेणी प्रसाद तिवारी

भारतीय कला में प्रमाशक्ति

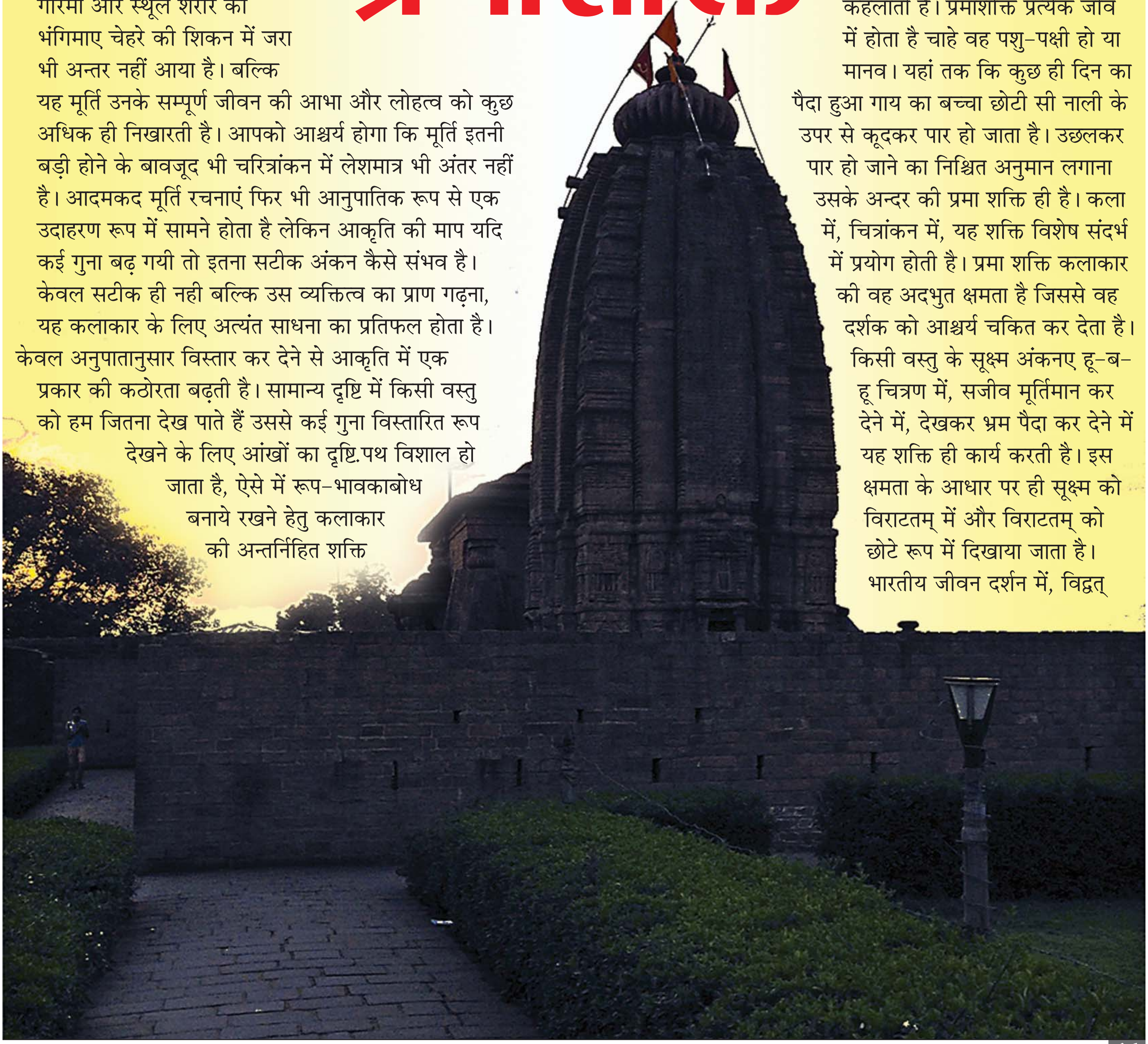

हाल ही में संसार की सबसे ऊंची मूर्ति सरदार वल्लभ भाई पटेल की प्रतिमा का अनावरण हमने देखा। विशाल एवं भव्य कला का उत्कृष्ट नमूना। इतनी बड़ी मूर्ति में भी पटेल जी के व्यक्तित्व की गहराई, गरिमा और स्थूल शरीर की भंगिमाए चेहरे की शिकन में जरा भी अन्तर नहीं आया है। बल्कि यह मूर्ति उनके सम्पूर्ण जीवन की आभा और लोहत्व को कुछ अधिक ही निखारती है। आपको आश्चर्य होगा कि मूर्ति इतनी बड़ी होने के बावजूद भी चरित्रांकन में लेशमात्र भी अंतर नहीं है। आदमकद मूर्ति रचनाएं फिर भी आनुपातिक रूप से एक उदाहरण रूप में सामने होता है लेकिन आकृति की माप यदि कई गुना बढ़ गयी तो इतना सटीक अंकन कैसे संभव है। केवल सटीक ही नही बल्कि उस व्यक्तित्व का प्राण गढ़ना, यह कलाकार के लिए अत्यंत साधना का प्रतिफल होता है। केवल अनुपातानुसार विस्तार कर देने से आकृति में एक प्रकार की कठोरता बढ़ती है। सामान्य दृष्टि में किसी वस्तु को हम जितना देख पाते हैं उससे कई गुना विस्तारित रूप देखने के लिए आंखों का दृष्टि.पथ विशाल हो जाता है, ऐसे में रूप-भावकाबोध बनाये रखने हेतु कलाकार की अन्तर्निहित शक्ति उसे ठीक-ठीक दिशा देती है। वह है प्रमा । प्रमा किसी भी रूप, वस्तु या कल्पना का यथार्थ भूमि पर स्थूल आकलन है। यतीन्द्रमत दीपिका में प्रमा का लक्षण देते हुए कहा गया है, यथावस्थित व्यवहारानुगुणं ज्ञानं प्रमा। अर्थात् जिस रूप में वस्तु विद्यमान है उसी रूप में उसकी अनुभूति प्रमा कहलाती है। प्रमाशक्ति प्रत्येक जीव में होता है चाहे वह पशु-पक्षी हो या मानव। यहां तक कि कुछ ही दिन का पैदा हुआ गाय का बच्चा छोटी सी नाली के उपर से कूदकर पार हो जाता है। उछलकर पार हो जाने का निश्चित अनुमान लगाना उसके अन्दर की प्रमा शक्ति ही है। कला में, चित्रांकन में, यह शक्ति विशेष संदर्भ में प्रयोग होती है। प्रमा शक्ति कलाकार की वह अदभुत क्षमता है जिससे वह दर्शक को आश्चर्य चकित कर देता है। किसी वस्तु के सूक्ष्म अंकनए हू-ब-हू चित्रण में, सजीव मूर्तिमान कर देने में, देखकर भ्रम पैदा कर देने में यह शक्ति ही कार्य करती है। इस क्षमता के आधार पर ही सूक्ष्म को विराटतम् में और विराटतम् को छोटे रूप में दिखाया जाता है। भारतीय जीवन दर्शन में, विद्वत्

परम्परा में, सामान्य आचार-व्यवस्था में, अमूमन दो धारा रही है। एक लोकधारा दूसरी शास्त्रीय। लोक और शास्त्र सदैव एक दूसरे को कहीं प्रभावितए कहीं समानांतर तो कहीं आपस में समाविष्ट होते रहे हैं।

भारतीय कलाधारा में द्वितीय महत्वपूर्ण सोपान है। प्रमाण किसी वस्तु या सुन्दरता की पुर्नसृजन हेतु प्रमाण अर्थात माप उसकी आकारिकी का ज्ञान होना परमावश्यक है। प्रथमतया हम अपनी आंखों से देखकर तुलनात्मक रुप से आकलन कर लेते हैं परन्तु मात्र इतने से रूपसिद्धि नहीं होने वाला। रूपाकारों की सत्यता और उसका सही-सही बोध बिना प्रमाण ज्ञान के नहीं हो सकता। कला रचना के विभिन्न आयामों की दिशा में हमारी भारतीय मेधा अत्यंत समृद्ध रही है। अनेकानेक विद्वान और उनके ग्रंथों से हमारा कलाविषयक मार्ग प्रशस्त एवं आलोकित हैं। यथाचित्रसूत्र; विष्णुधर्मोत्तर पुराणद्धमानसोल्लास, शुक्रनीतिसार, उज्जवलनीलमणि, संमराङगणसूत्रधार, वृहत्संहिता आदि।

कला में माप, प्रमाणादि विचार में स्वतंत्रतापूर्वक लोक और शास्त्रीय धाराएं निर्बाध चलती रही हैं। लोक में व्याप्त कलादृष्टि में प्रमाशक्ति अद्‌भुत रुप में विद्यमान है परन्तु प्रमाण, अनुपात का अपना अनोखा ढंग है। इसका सबसे सुंदर उदाहरण लोक में बनने वाले मिट्टी के शिल्प व खिलौने हैं। बंगाल के विष्णुपुर व तमिलनाडु में बनने वाले मिट्टी की मूर्ति में स्वत: एक अनुपात है। विष्णुपुर में स्थानीय मिट्टी में अद्‌भुत रचना की गई है। मंदिरों का निर्माण एंव उसमें रचित भावमय आकृतियां जिनमें उस कलाकार के हाथों के रचाव का सौष्ठव दिखाई पड़ता है। तमिलनाडु के लोक कलाकारों द्वारा बनाया

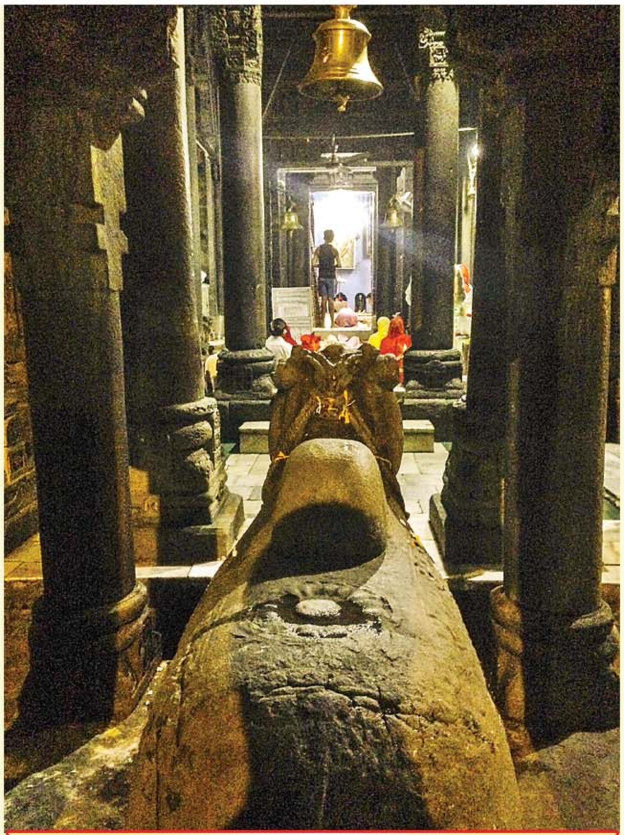

लोकप्रमाण का सबसे अनूठा और अत्यंत सरल रूप आपको वनवासी लोगों की कला में मिलेगा। भारतीय कला में जितना बाहुल्य नगरीय एवं ग्रामीण समाज का रहा है, उससे कम आदिवासियों का नहीं है...

जाने वाला घोड़े की विशालतम आकृतियां, यथार्थ में बने घोड़े से अलग सौंदर्य प्रमाण सिद्ध करती हैं।

इसमें कोई लिखित शास्त्रीय नियम नहीं है, परन्तु परम्परा से प्राप्त एक आकार नियम है जो उसे मिट्टी में बनाने परए सरल आकार गढने के लिए प्रमाबोध होना चाहिए, जो कि उस मिट्टी में काम करते हुये ही जाना जा सकता है। लोकप्रमाण का सबसे अनूठा और अत्यंत सरल रूप आपको वनवासी लोगों की कला में मिलेगा। भारतीय कला में जितना बाहुल्य नगरीय एवं ग्रामीण समाज का रहा है, उससे कम आदिवासियों का नही है। प्रकृति में अत्यधिक रमें होने के कारण इनमें हू-ब-हू सादृश्य या प्रमाण का गणितीय आकलन की नियमावली नहीं है किन्तु स्वत: जन्य रूपबोध का प्रमाण इनके पास है जो कि नगरीय समाज के कलाप्रमाण नियमों से बिल्कुल भिन्न है। इनके यहां शब्द कम होते हैं, भाव ज्यादा। इनमें बनने वाले लम्बोतरे चेहरे, अधिक लम्बाई के शरीर वाले शिल्प, अद्भुत आकलन से युक्त हैं। वस्तुत: ये शिल्प इनके पूज्य देवों के होते हैं। उनको केवल बनाना ही नहीं होता बल्कि रचना एक अनुष्ठान होता है। इसलिए स्वत: निर्झरणी की तरह स्वतंत्र रचनाविधान होता है। इन शिल्पों में अनुपात उस अनुष्ठानिक के ऊपर होता है। इस तरह हर पीढ़ी उस आंकलन, उस अनुष्ठान को रचती है किन्तु सबका प्रमाण उस व्यक्तिगत के अनुसार होता है फिर भी एक दायरे में, जिसे आप आदिवासी कलाएं कहकर सीमा रेखा में बांध देते हैं।

जब इन्ही भाव, आकृति, प्रमाणों को बहुतेरे आधुनिकों पिकासो, गोग्वं, हुसैन आदि ने चित्र में उतार कर गैलरी बाजार में करोड़ों में बेचा तो वे समकालीन कला के धरोहर बन गए।

भारतीय समाज प्रयोगों की अनवरत भूमि रही है। लोक हमेशा स्वतंत्र रहा है अपने प्रतिमान गढ़ने के लिए। उसका अपना प्रमाण है, अपनी शास्त्रीयता। इसका सुन्दर स्वरूप ग्राम्य जीवन में फैले त्योहारों पर सृजित विविध रंगोली, मांडना आदि रचनाएं है। विवाहादि, पूजन के अवसर पर गाय के गोबर से गौर-गणेश हाथों से बनाकर; त्वरित पूजा किया जाता है। वे ग्रामदेवता जो ग्राम की रक्षा करते हैं, उनकी आकृति में जो पिंडी बना दी जाती है या पहलवान

बीरबाबा बनाने के लिए अनगढ़ पत्थर पर सिंदूर, टीका दिया जाता है, या सायर देवी के नाम पर, ललही छठ के नाम पर मिट्टी के ढूहे की थान बना दी जाती है, उसमें किसी शास्त्रीय नियम की आवश्यकता नहीं होती। एक तरफ मन्दिर बनाने के और उसमें मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा हेतु इतने नियम, विधि-विधान बनाये गए हैं, वहीं दूसरी ओर दो ईंट शंकुनुमा खड़े कर उसके अन्दर नदी के बालू से निकले गोले पत्थर को रखकर, जल चढ़ाकर शिव बना दिया जाता है। अद्भुत छूट है लोक मन को।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र के अध्याय 35 में चित्रांकन हेतु शरीर की ऊंचाई के अनुसार पांच प्रकार के पुरुष माने गए हैं। हंस, भद्र, मालव्य, रुचक, शशक। इसी प्रमाण के अनुरूप देवता, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर आदि चित्रित किए जाते थे। चित्रसूत्र के 39 अध्याय तक विभिन्न अंगों के प्रमाण, शरीर मुद्राओं के माप का वर्णन है। साधारण मानव, राक्षस, किन्नर, यक्षादि के शारीरिकी का उनके मुखादि भाव का विस्तृत वर्णन है।

यह प्रमाण इतना सरल है कि आकृतियों के मापन हेतु बित्ता व अंगुल भी प्रमाण रूप में समझाए गए हैं। देवता अथवा मानव का चित्रण सामान्य मनुष्य से बड़ा दिखाया जाना चाहिए। अजंता की 17वीं गुफा में चित्रित महात्मा बुद्ध और यशोधरा का चित्र जिसमें यशोधरा अपने पुत्र राहुल को बुद्ध को सौंप रही है।

इस चित्र में बुद्धत्व को दर्शाने हेतु यशोधरा, राहुल के आकार की तुलना में समान दृश्य तल पर बुद्ध को अपेक्षाकृत बड़ा चित्रित

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र के अध्याय 35 में चित्रांकन हेतु शरीर की ऊंचाई के अनुसार पांच प्रकार के पुरुष माने गए हैं। हंस, भद्र, मालव्य, रूचक, शशक। इसी प्रमाण के अनुरूप देवता, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर आदि चित्रित किए जाते थे...

किया गया है। यहां अधिक बड़ा बनाना, बुद्ध की महिमा को कलाकार ने प्रमाण में ढालकर अद्भुत प्रमाशक्ति का परिचय दिया है। इस तरह के अनेक उदाहरण अजंता-एलोरा में आपको मिल जाएंगे।

जिसे भारतीय दृष्टि कहते हैं, उसका मूल तत्व स्वयं मे प्रतिष्ठित होना अर्थात इस प्रकृति से, जगत से आत्मीय संवाद। जड़-जंगम से चक्षु संवाद की धारा एकल, एकांगी या एकमार्गी नहीं हो सकती।

वह दृष्टि विश्व के अनेक दृष्टान्तों से भिन्न है, इसलिए उसकी पुर्नसृष्टि के सारे आकलन, उपकरण एकदम नया होगा, अजनबियत की हद तक। किसी से तुलनात्मक रुप में श्रेष्ठबोध की प्रतियोगिता से परे। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि कुछ साल हम किसी आक्रमण काल में रहे उसके बाद हमने अपने ही दृष्टि की उपेक्षा कर दी। एक विकसित उधारी मुलम्मे में अपनी मूल धात्विकता को ढंक दिया। अब सब एकरंगी वैश्विकता में मारे-मारे फिर रहे हैं।

विश्व अभी भी भारत को उसके अजंता-एलोरा, खजुराहो, कांगड़ा, राजस्थानी, पिछवई, मधुबनी, वरली में ढूंढ रहा है। मैं नहीं कहता कि फिर से वही हो जाना चाहिए जो चार-पांच सौ साल पहले था लेकिन मूल आत्मा की खोज होनी चाहिए। ऐतिहासिक अनस्थिरता के लम्बे कालखण्ड के बाद हमने तथाकथित आजादी भी पाई तो पहचान की हडबोंगई में उन्ही के रूप ओढ़ लिए जिनके हम गुलाम थे। कला के हमारे मानक पुराने घोषित कर दिए गए।

कला विद्यालयों में प्रमाशक्ति का अध्ययन विकास केवल एक अर्थी बनकर रह गया है। निर्जीव वस्तुओं को एक साथ टेबल पर कपड़े के साथए खास दिशा से आती प्रकाश-छाया में संयोजित करके चित्रण करना जिसे अंग्रेजी में 'स्टिल लाइफ' कहा जाता है। स्त्री या पुरुष को मॉडल बनाकर सामने से हू-ब-हू आनुपातिक चित्रण करना यह 'लाइफ स्टडी' कहलाता है अर्थात प्रमाण अध्ययन केवल सामने उपस्थित वस्तु के आकार के समान। जो वस्तु जितना इस दुनिया में है उतना बराबर ही रच देना चमत्कृत भले ही कर दे किन्तु यह एकांगी ही होगा। अरे! हम तो रूप के अन्दर उस आत्मा को रचने वाले हैं। हमने तो उस अगम्य को भी ध्वनित किया है। उस आकार को बनाकर उसमें प्राणछन्द रचे हैं। वो सहज है, सरल भी लेकिन एकदिशीय नहीं, बहुदिशीय, एकप्रमाण नहीं, बहुप्रमाण।

मोजो की मौजभरी पत्रकारिता

❒ रविंद्र सिंह भड़वाल

समाज के अन्य क्षेत्रों की ही तरह मीडिया क्षेत्र तकनीकी विकास से गहरे से प्रभावित हुआ है। हाल के समय में तकनीकी विकास मीडिया क्षेत्र में जो कृछ बड़े बदलाव लेकर आया है, उन्हीं में से एक है मोबाइल जर्नलिज्म। मोबाइल जर्नलिज्म पत्रकारिता का वह स्वरूप है जिसमें आवश्यक उपकरणों एवं व्यावसायिक प्रसारण की गुणवत्ता से लैस मोबाइल मल्टीमीडिया स्टूडियो के जरिए खबरों को कवर किया जाता है। मोबाइल जर्नलिज्म में मोजो किट की मदद से किसी खबर से संबंधित शूटिंग, रिकॉर्डिंग, सम्पादन और इसके वितरण का कार्य किया जाता है। इसके अलावा अगर किसी एक्सक्लूसिव खबर को कवर किया जाना है तो मोजो किट लाइव स्ट्रीमिंग के कार्य में एक बेहतरीन विकल्प के रूप में उपयोगी साबित हो रहा है। मोजो किट के जरिए एक्सिक्लूसिव खबरों को लाइव स्ट्रीमिंग से न्यूज रूम में शेयर किया जाता है और फिर वहां से खबर को टीवी चैनल पर प्रसारित किया जा सकता है।

मोबाइल जर्नलिज्म के शुरू होने के बाद स्मार्टफोन केवल मोबाइल बनकर कर नहीं रह गया है बल्कि मीडिया कवरेज में इसने खुद को एक उपयोगी उपकरण के रूप में स्थापित कर लिया है। डिजिटल होती मीडिया दुनिया में मोबाइल जर्नलिज्म ने ग्राउंड रिपोर्टिंग के क्षेत्र को विस्तृत बनाने के साथ-साथ सरल भी बना दिया है। इस आविष्कार ने रिपोर्टिंग के लिए परंपरागत मीडिया के भारी-भरकम उपकरणों को जगह.जगह ढोने की मजबूरियों से मुक्ति दिलाई है। मोबाइल जर्नलिज्म दोनों ही तरह के पत्रकारों के लिए मददगार साबित हो रही है। चाहे वे पेशेवर पत्रकार हों या शौकिया पत्रकार।

मोबाइल जर्नलिज्म के शुरू होने के बाद स्मार्टफोन केवल मोबाइल बनकर कर नहीं रह गया है बल्कि मीडिया कवरेज में इसने खुद को एक उपयोगी उपकरण के रूप में स्थापित कर लिया है...

मीडिया में समय का अपना खास महत्व रहा है। किसी भी खबर की उपयोगिता तभी है जब उसे समय पर लक्षित समूह तक पहुंचाया जाए। पहले के समय में मीडिया नेटवर्क की अपनी एक सीमित पहुंच होती थी और उस क्षमता के साथ हर खबर को समय पर कवर कर पाना संभव नहीं था। हरसंभव प्रयास के बाद भी कई खबरें छूट जाती थीं लेकिन मोबाइल जर्नलिज्म और मोजो किट के माध्यम से सीमित संसाधनों एवं नेटवर्क की चुनौती से निपटने में मीडिया ने काफी हद तक सफलता हासिल की है। मोजो की खूबियों के कारण तमाम मीडिया हाउस न केवल इसके महत्व को स्वीकार करने को बाध्य हैं बल्कि अपने लिए इसकी उपयोगिता को देखकर उन्होंने इसे प्रोत्साहित भी किया है।

अगर बात करें मोबाइल जर्नलिज्म के लिए जरूरी उपकरणों की तो एक बढिया़ क्वालिटी के मोबाइल के जरिए इस कार्य को अंजाम दिया जा सकता है। हालांकि मोबाइल जर्नलिज्म में पेशेवर दक्षता और गुणवत्ता जैसे मूल्यों को शामिल करना है तो इसमें मोजो किट काफी मददगार साबित हो सकती है। इस किट में आम तौर पर ट्राइपॉड, शॉटगन माइक्रोफोन, एल-इ-डी, ऑडियो एडेप्टर, माइक्रोफोन केबल, माइक्रोफोन एक्सटेंशन केबल, पोर्टेबल पावर बैंक, मोबाइल हेडफोन जैसे आवश्यक उपकरण शामिल रहते हैं। मोजो किट की मदद से कवरेज को किसी पेशेवर वीडियोग्राफर की ही तरह अंजाम दिया जा सकता है। यह उपकरण या किट आज तमाम ऑनलाइन रिटेलर कंपनियां किफायती दामों पर उपलब्ध करवा रही हैं।

सबसे आगे, सबसे तेज की राह पर अग्रसर मीडिया जगत में नि: संदेह मोजो एक प्रभावी उपकरण बनकर उभरा है। हालांकि इसकी अपनी कुछ चुनौतियां भी हैं। सबसे आगे निकलने की होड़ में या शौकिया तौर पर पत्रकारिता क्षेत्र में प्रवेश करने वाले लोगों द्वारा अस्पष्ट, आधी-अधूरी या फिर गलत सूचनाएं भेजने की हर समय आशंका बनी रहती है। इसके अलावा हल्के मोबाइल या सहायक उपकरण किसी खबर की कवरेज की व्यावसायिक गुणवत्ता वाली अपेक्षाओं को पूरा करने में अक्षम रहते हैं।

इन चुनौतियों से यदि प्रभावी ढंग से पार पा लिया जाए तो मोबाइल जर्नलिज्म की विश्वसनीयता और उपयोगिता को बढ़ाया जा सकता है। मोजो के क्षेत्र में नागरिक जागरूकता एवं भागीदारी को बढ़ाने के साथ मीडिया हाउस और शिक्षण संस्थान अगर इस क्षेत्र से जुडने् के इच्छुक लोगों के शिक्षण प्रशिक्षण के प्रयास करें तो अभिलषित परिणाम हासिल किए जा सकते हैं।

सच्चाई की फेक फैक्ट्री

बीबीसी द्वारा भारत में फेक न्यूज पर किया गया सर्वे और उसकी रिपोर्ट में कितनी साफगोई और सावधानी बरती गई है, इसका अंदाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि बीबीसी द्वारा फेक न्यूज की एक ही रिपोर्ट अब तक 'तीन बार' जारी की जा चुकी है...

❑ जयेश मटियाल

जब फेक न्यूज की फैक्ट्री ही फेक न्यूज के खिलाफ मुहिम चलाती है, और कहती है कि हम फेक न्यूज के लिए चिन्तित हैं, तब यह हास्यास्पद भी लगता है, अचम्भित भी करता है, और वाकई चिन्तित भी करता है। जिस पर पूर्वाग्रह, नस्लवाद, तथ्यों से छेड़-छाड़ के आरोप लगते रहे हों, जो लगातार विवादों में रहा हो, जिसे हमेशा आलोचनाओं का सामना करना पड़ा हो। ऐसे में उसके प्रति संशय पैदा होना स्वाभाविक बात है।

जी हां। मैं बात कर रहा हूं बीबीसी की। हाल ही में बीबीसी ने यह दावा किया कि उसने भारत में फेक न्यूज पर एक रिसर्च की है, जिसके बाद बीबीसी ने एक रिपोर्ट जारी की, जिसमें बीबीसी के अनुसार फेक न्यूज फैलाने में चार चीजें मुख्य रूप से सामने आई, पहली हिंदू सुपीरियॉरिटी (श्रेष्ठता), दूसरी हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान, तीसरी राष्ट्रीय अस्मिता व गर्व और चौथी एक नायक का व्यक्तित्व (नरेन्द्र मोदी)।

इस पूरी रिपोर्ट में राष्ट्रवाद (राष्ट्रीय अस्मिता गर्व) शब्द को चुना गया और बताया गया कि भारत में फर्जी समाचार (फेक न्यूज), राष्ट्रवाद की आड़ में फैलाया जा रहा है। बीबीसी द्वारा भारत में फेक न्यूज पर किया गया सर्वे और उसकी रिपोर्ट में कितनी साफगोई और सावधानी बरती गई है, इसका अंदाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि बीबीसी द्वारा फेक न्यूज की एक ही रिपोर्ट अब तक 'तीन बार' जारी की जा चुकी है। पहली बार जब यह रिपोर्ट जारी की गई तो उसमें बीबीसी ने 'दिवालिया कानून' का मतलब बताया कि दिवाली के दौरान कानून बदल रहा है, जिसके बाद बीबीसी ने दूसरी बार जारी की गई रिपोर्ट में लिखा कि हमने हिन्दी शब्द दिवालिया के अनुवाद में त्रुटि की है व इसे सही किया

गया है। पहली रिपोर्ट में पेज नं. 88 जिसमें दि बेटर इंडिया नामक वेबसाइट को उन नामों में जोड़ दिया, जो नाम बीबीसी को लगता है कि वे बीजेपी समर्थक समूह हैं और फेक न्यूज फैलाने के लिए जाने जाते हैं। दि बेटर इंडिया ने इस पर आपत्ति जताई जिसके बाद बीबीसी को अपनी दूसरी बार जारी की गई रिपोर्ट में दि बेटर इंडिया का नाम हटाना पड़ा। बात यहीं पर खत्म नहीं हुई, इसके बाद बीबीसी ने दि बेटर इंडिया से ई-मेल के जरिये 'माफी मांगी', जिसे दि बेटर इंडिया ने 17 नवंबर, 2018 को अपने ट्विटर अकाउंट से सार्वजनिक किया।

भारत में फेक न्यूज पर बीबीसी की यह रिपोर्ट न हुई, प्ले स्टोर की ऐप हो गई, जो बार-बार अपडेट मांग रही है...

बीबीसी द्वारा फेक न्यूज की एक ही रिपोर्ट जब दूसरी बार अपडेट्ड रूप में जारी की गई तो, इसमें भी खामियां कुछ कम नहीं थी। दूसरी रिपोर्ट पेज नं. 87 के दूसरे पैराग्राफ में लिखा है कि '30 स्त्रोत बीजेपी समर्थक समूह जिन्होने कम से कम एक बार तो फेक न्यूज फैलाई है'। जिनके नाम पेज नं. 88 में हैं। बीबीसी की तीसरी रिपोर्ट जारी होती है, जिसमें दूसरी रिपोर्ट के 30 स्त्रोत 29 स्त्रोत में बदल जाते हैं। दूसरी रिपोर्ट पेज नं. 88 में नाम तो 32 हैं पर ग्राफ में 33 दिखाए गए हैं, जबकि उन नामों की संख्या 34 दिखाई गई है, इसमें भी वन्देमातरम् नाम दो बार लिखा गया है, यह नाम वाकई में दो बार है या नहीं, यह तो बीबीसी ही जाने (तीसरी रिपोर्ट में भी वन्देमातरम् नाम दो बार है)।

दूसरी रिपोर्ट के पेज नं. 92 में जिसमें ग्राफ और संख्या में 11 जबकि नाम केवल 10 दिखाए गए हैं। इसके बाद बीबीसी अपनी तीसरी अपडेट्ड रिपोर्ट जारी करता है। इसमें भी बीबीसी गलतियों को मानने की जगह सफाई देने की कोशिश कर रहा है। भारत में फेक न्यूज पर बीबीसी की यह रिपोर्ट न

हुई, प्ले स्टोर की ऐप हो गई, जो बार-बार अपडेट मांग रही है। बीबीसी ने फेक न्यूज फैक्ट्री होने का एक उदाहरण स्वयं ही इस रिपोर्ट में दिया है, जिसमें खुद बीबीसी एक भ्रामक और फेक न्यूज फैला रहा है। पेज नं. 72 में फोटो नं. 13 जिसमें बीबीसी लिखता है कि 'भ्रामक संदेश का दावा है कि दिवालिया कानून बदलने के कारण 2100 कंपनियों ने 83 हजार करोड़ रुपए बैंको का लोन लौटाया है।' जबकि असल में यह खबर सत्य है, और इसकी पुष्टि टाइम्स ऑफ इंडिया समेत कई अन्य बडे मीडिया चैनलों और पत्र-पत्रिकाओं ने की है।

बीबीसी फेक न्यूज फैक्ट्री का एक और उदाहरण इसी रिपोर्ट में मिलता है। पेज नं. 88 में बीबीसी के अनुसार बीजेपी समर्थक समूह जो फेक न्यूज फैलाते हैं, उनमें 'वायरल इन इंडिया' नामक एक फेसबुक पेज भी शामिल है, जबकि यह फेसबुक पेज असल में कांग्रेस समर्थक फेसबुक पेज है और इसकी पुष्टि 'प्रतीक सिन्हा' ने 16 नवंबर 2018 को अपने ट्विटर अकाउंट से की है। यह वही प्रतीक सिन्हा हैं, जो अल्ट न्यूज के सह-संस्थापक हैं। जिसके बारे में पेज नं. 100 में बीबीसी ने लिखा है, कि फेक न्यूज की पहचान के लिए 'तथ्य जांच साइट्स' का उपयोग किया गया है, जिनमें तथ्य जांच साइट 'अल्ट न्यूज' भी शामिल है।

बीबीसी डिजिटल हिन्दी के संपादक राजेश प्रियदर्शी के न्यूजलॉन्ड्री में दिए गए साक्षात्कार के अनुसार बीबीसी ने राष्ट्रीय स्तर पर कोई सर्वेक्षण नहीं किया है और दस अलग-अलग शहरों से विभिन्न आयु, आय व लिंग (जेंडर) के 40 लोगों के सोशल मीडिया व्यवहार को परखा गया है और जिन लोगों का साक्षात्कार लिया गया उन्हे यह नहीं कहा कि बीबीसी फेक न्यूज के बारे में कोई रिसर्च कर रहा है, वे आगे कहते हैं कि बीबीसी की यह रिसर्च कोई अन्तिम सत्य नहीं है। बीबीसी की इस रिपोर्ट में कार्यरत पीएचडी डिग्रीधारक व अन्य ज्ञानियों ने दिवालिया कानून को दिवाली के त्यौहार से जोड़ दिया, यही नही इस कानून को ही भ्रामक संदेश बता दिया। बीबीसी तो यह भी भूल गया कि उसने खुद 12 मई 2016 को दिवालिया कानून को व्यवसाय के लिए अच्छा बताया था। एक ही रिपोर्ट को तीन बार बदला जाना, ग्राफ, नाम, संख्याओं में गलती करना, दि बेटर इंडिया वेबसाइट से माफी मांगना और फिर उसे एक मानवीय भूल करार देना, दूसरी बार जारी अपडेट्ड रिपोर्ट में 30 स्त्रोत और तीसरी बार जारी अपडेट्ड रिपोर्ट में 29 स्त्रोत का बदल जाना, और यह कहना कि स्त्रोतों ने कम से कम एक बार तो फेक न्यूज फैलाई है, बिना कोई राष्ट्रीय स्तर पर सर्वे किए और जमीनी स्तर पर मात्र 40 लोगों के सोशल मीडिया व्यवहार को परख कर उसे फेक न्यूज रिसर्च बताना, ऐसी कई अन्य चीजें दर्शाती है कि बीबीसी की यह रिपोर्ट कितनी विश्वसनीय है और बीबीसी इस रिपोर्ट के प्रति और भारत व भारतीयता के प्रति कितना संवेदनशील है। एक तरफ बीबीसी कहता है कि यह रिसर्च कोई अन्तिम सत्य नहीं है और दूसरी तरफ कहता है कि भारत में राष्ट्रवाद की आड़ में फेक न्यूज फैल रही है। भारत के प्रति बीबीसी की मनसा और मानसिकता बीबीसी पहले भी कई बार दिखा चुका है।

इस रिपोर्ट से तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि बीबीसी ने अपना निष्कर्ष पहले से तैयार रखा था, बस रिपोर्ट आनन-फानन में तैयार कर दी। बीबीसी डिटॉल का धुला नहीं है। हमेशा की तरह इस बार भी बीबीसी को आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, बीबीसी को माफी भी मांगनी पड़ी है। अन्त में बीबीसी से सतर्क रहें, सावधान रहें।

लेखक, पत्रकारिता एवं जनसंचार के विद्यार्थी हैं।

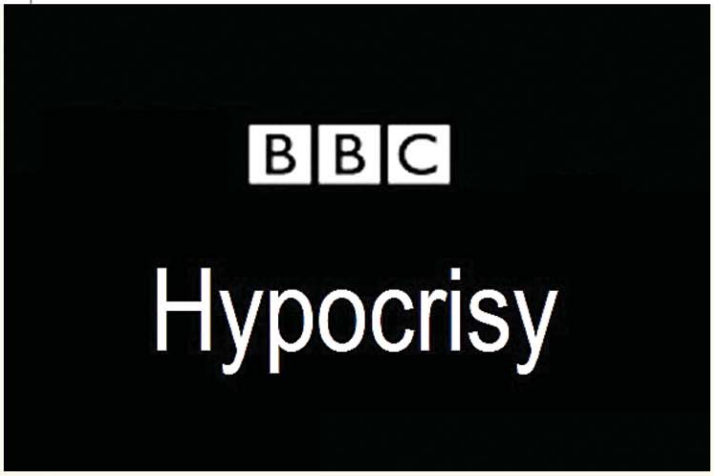

बीबीसी की इस रिपोर्ट में कार्यरत पीएचडी डिग्रीधारक व अन्य ज्ञानियों ने दिवालिया कानून को दिवाली के त्यौहार से जोड़ दिया, यही नही इस कानून को ही भ्रामक संदेश बता दिया। बीबीसी तो यह भी भूल गया कि उसने खुद 12 मई 2016 को दिवालिया कानून को व्यवसाय के लिए अच्छा बताया था...

कालनेमियों के कुचक्र में सबरीमाला

❒ मुकेश कुमार सिंह

भगवान अयप्पा का सबरीमाला मंदिर केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम से 175 किमी दूर सह्याद्रि पर्वत शृंखला की पहाड़ियों पर स्थित है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार भगवान अयप्पा का सम्बंध भगवान विष्णु और भगवान शिव दोनों से जोड़ा जाता है, इसलिए उन्हें हरिहरपुत्र भी कहा जाता है। यह दक्षिण भारत का एक प्रमुख तीर्थस्थल है।

ऐसी मान्यता है कि भगवान अयप्पा ब्रह्मचारी एवं तपस्वी है। रजस्वला महिलाओं को मंदिर में आने से भगवान अयप्पा का ब्रह्मचर्य नष्ट हो सकता है। इसलिए 10 से 50 वर्ष तक की रजस्वला महिलाओं की मंदिर में प्रवेश प्रतिबंधित है। मंदिर में 10 से कम और 50 वर्ष से ज्यादा उम्र की महिलाओं को ही प्रवेश की अनुमति है। इस 800 वर्ष पुरानी प्रथा को सुप्रीम कोर्ट ने तोड़ते हुए किसी भी आयु की महिलाओं को मंदिर में प्रवेश की अनुमति दी है। सुप्रीम कोर्ट ने 28 सितंबर को एक याचिका पर सुनवाई करते हुए सबरीमाला मंदिर में किसी भी आयु की महिलाओं के प्रवेश को अनुमति दी है। धार्मिक आस्थाएं श्रेष्ठ है या परंपराओं को तोड़ने वाला सर्वोच्च न्यायालय का आदेश, आस्थावान और कानूनविदों के बीच यह विमर्श का विषय हो सकता है। लेकिन केरल की साम्यवादी सरकार का इस मुद्दे पर रवैया और साम्यवादी कार्यकर्ताओं के मंदिर प्रवेश के उत्साह ने हिन्दू समाज के कान खड़े कर दिए। केरल के वामपंथी मुख्यमंत्री पिनरई विजयन ने कहा है कि सरकार सुप्रीम कोर्ट के फैसले को किसी भी कीमत पर लागू करेगी। सरकार ने कहा कि सबरीमाला मंदिर धर्मनिरपेक्ष मंदिर है। क्या मंदिर भी धर्मनिरपेक्ष हो सकते हैं?

केरल सरकार ने 12 नवंबर 2018 को केरल उच्च न्यायालय में दाखिल हलफनामा में कहा है कि 'सबरीमाला पर केवल हिन्दुओं का ही अधिकार नहीं है। किसी भी नतीजे पर पहुंचने के लिए मुस्लिमों और ईसाइयों के साथ भी विमर्श किया जाना जरूरी है।' दरअसल यह हिन्दूओं और हिन्दू संस्कृति के खिलाफ पिनरई सरकार का गहरा षड्यंत्र है। राज्य सरकार हिन्दू संस्कृति, परंपरा और रीति-रिवाजों को कुचल देना चाहती है। केरल उच्च न्यायलय ने मंदिर प्रबंधन के कामकाज में सरकार के दखल पर नाराजगी जताई है। कोर्ट ने केरल पुलिस द्वारा श्रद्धालुओं के नाम व पता दर्ज करने पर कहा कि लगता है, सरकार के इरादे कुछ और है। लेकिन एक बात निश्चित है कि आस्था को तर्क के आधार पर तय करने वाले इस फैसले ने बहुसंख्यक समुदाय की भावनाएं आहत हुई हैं। सबरीमाला मंदिर में महिलाओं के प्रवेश को लेकर कई सामाजिक संगठन और मीडियाकर्मी काफी सक्रिय है। हैदराबाद के मोजो टीवी की जर्नलिस्ट कविता जक्कल और रिहाना फातिमा मंदिर में घुसने का प्रयास किया। ये दोनों 250 पुलिसकर्मियों के साथ मंदिर में घुसने का प्रयास किए, परन्तु श्रद्धालुओं के विरोध के कारण वे मंदिर में घुसने में असफल रही। भूमाता ब्रिग्रेड की तृप्ति देसाई अपने पांच महिला साथियों के साथ मंदिर में प्रवेश की जिद कर रही थी। श्रद्धालु प्रदर्शनकारियों ने उन्हें कोच्चि हवाई अड्डे से बाहर नहीं निकलने दिया। अंततः तृप्ति देसाई को साथियों सहित एयरपोर्ट से ही वापस जाना पड़ा। उन्होंने कहा कि वह सबरीमाला मंदिर फिर जल्द ही आएंगी। मंदिर में घुसने का प्रयास करने वाली ये महिलाएं न तो श्रद्धालु है और न ही सामाजिक कार्यकर्ता।

मंदिर पहुंचने वाली अधिकांश महिलाओं में नास्तिक, हिन्दुत्व विरोधी, किस ऑफलव मुहिम की नेता व सेकुलर महिलाएं थी। इसमें कुछ महिलाएं सोशल मीडिया पर भद्दी और अश्लील टिप्पणियां और पोस्ट कर चुकी थी। सबरीमाला की कोई भी श्रद्धालु महिला भक्त इस भीड़ का हिस्सा नहीं थी।

ये सेकुलर महिलाएं हिन्दूओं की आस्था से खिलवाड़ कर रही है। मंदिर प्रशासन ने सभी मीडिया संस्थानों को पत्र लिखकर महिला पत्रकारों को रिपोर्टिंग के लिए न भेजने का अनुरोध किया है।

इस मामले में मीडिया की अति सद्यिछ्यता उसकी पेशेवर भूमिका पर प्रश्न खड़ा करती है।

– लेखक मीडिया विश्लेषक हैं।

भारतीय यथार्थ का फिल्मी मोहल्ला

भारतीय यथार्थ को सांस्कृतिक संवेदनशीलता के साथ उतारने के प्रयास न के बराबर हुए हैं। प्राय: भारतीय सच को फिल्मी पर्दे पर इस तरह परोसा जाता है कि उससे आत्म-परिष्कार की बजाय आत्म-तिरस्कार की भावना पैदा होती है। अभी तक फिल्मी पर्दे पर परोसे गए सच से विद्वेष और पिछड़ेपन की मानसिकता ही पैदा होती रही है। इस परिस्थिति में डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी की फिल्म 'मोहल्ला अस्सी' कहानी कहने के एक नए व्याकरण की तरह आई है। जिस सांस्कृतिक संवेदनशीलता के साथ यह फिल्म खांटी भारतीय सच को परोसती है, वह फिल्म को एकदम अलहदा बना देती है।

यहां हर सच के लिए स्थान है, सच में कड़वापन भी है, चरित्र में पर्याप्त विरोधाभास के लिए स्पेस है, लेकिन कहानी इस खूबसूरती के साथ कही गई है कि चरित्र गुंथे हुए है, जुबानों की तपिश के बावजूद मन में मैल पैदा नहीं होता, लोग एक-दूसरे के साथ संवाद में बने हुए हैं।

डॉ. चद्रप्रकाश द्विवेदी ने ऐसी ही कोशिश अपनी फिल्म पिंजर में भी की थी, लेकिन बहुत सारे पक्षों को एक साथ समेटने के चक्कर में सब कुछ गड्डमड्ड हो गया था। 'मोहल्ला अस्सी' में सभी पक्षों को इतने सहज ढंग से उकेरा गया है कि दुराग्रहों के दबाव हावी नहीं हो पाते। फिल्म में धर्मनाथ पांडेय की भूमिका में सनी देओल देहभाषा के स्तर पर बहुत प्रभावी हैं। उनकी पत्नी की भूमिका में साक्षी तंवर ने बनारसीपन और बनारसी यथार्थ को गजब ढंग से आत्मसात किया है।

पप्पू पान वाले की दुकान पर बैठने वाले सभी किरदारों ने कमोबेश अपने किरदारों के साथ न्याय किया है।

विभिन्न किरदारों को यथार्थ के धरातल पर बनाए रखते हुए संदेश देने का काम डॉ. चंद्रप्रकाश की खूबी रही है। यह खूबी इस फिल्म में दिखती है। वह साक्षात्कारों में इस बात को स्वीकार कर चुके हैं कि उनकी वास्तविक क्षमता शब्द, संवाद और लेखन है। पूरी फिल्म में कई ऐसे संवाद हैं, जो जुबान और दिमाग दोनों पर चढ़ जाते हैं। हम घाट को पिकनिक स्पॉट और गंगा का स्वीमिंग पूल नहीं होने देंगे, अब विदेशी ही इतिहास लिखेंगे बनारस का, हमने राम से यह कभी नहीं मांगा कि कष्ट न मिले, हमने तो हमेशा कष्ट को सहने की शक्ति मांगी जैसे संवाद काफी प्रभावी हैं।

संभवत: 'मोहल्ला अस्सी' ऐसी पहली फिल्म है, जिसमें ब्राह्मण वर्ग को सभी आयामों के साथ दिखाया गया है। उनका धर्मसंकट, तंगहाली, बदलते परिवेश में उभरती चुनौतियां और सामाजिक कटाक्षों के बढ़ते चलन और उससे पैदा होने वाली घुटन सभी को करीने से परदे पर उतारा गया है। शिवलिंग को प्रवाहित करते समय पांडेय परिवार जिस मानसिक स्थिति से गुजरता है, उसका चित्रण इतने प्रभावी ढंग से किया गया है कि वह दिमाग पर छा जाता है। इससे जुड़े दृश्य यह बताते हैं कि परम्पराएं बहुत त्याग से बचती और बढ़ती हैं।

बॉक्स ऑफिस पर इसे मिली सफलता-असफलता से इस फिल्म का आकलन नहीं किया जा सकता। फिल्म के चरित्र धर्मनाथ पांडेय पूरी फिल्म में संघर्ष करते हैं, लेकिन अंतत: फिल्म यह बता जाती है कि सच उनके साथ है। यही बात फिल्म के लिए भी कही जा सकती है, वह सफल भले न हो, उसके पास सच है। इसी कारण 'मोहल्ला अस्सी' वर्तमान का दस्तावेज और भविष्य की फिल्म है।

— डॉ. जयप्रकाश सिंह